कमला भसीन

इन दिनों उत्तर भारत के पांच राज्यों में चुनावों की सरगर्मियां रही हैं। चारों तरफ पोस्टर, पर्चे, झंडे, झंडियां, दीवारों पर अलग-अलग उम्मीदवारों के नाम और निशान। लाउड स्पीकरों पर न समझ में आने वाले ऐलान। सजी हुई जीपें, कारें, दौड़ते हुए, हाथ जोड़ते हुए नेता, नारे लगाते हुए उनके समर्थक, चमचे या किराये के पिट्ठू। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान में, हर जगह यही माहौल रहा है। पैसा पानी की तरह बहाया गया। हर बार की तरह हर उम्मीदवार ने दुनिया भर के वादे किए।

इस पूरे राजनैतिक माहौल में हमेशा की ही तरह औरतों की भागीदारी बहुत कम रही। इन पांचों राज्यों के चुनावों में पांच प्रतिशत से भी कम औरतें चुनाव लड़ रही हैं। किसी भी पार्टी ने पांच-छः प्रतिशत से ज्यादा औरतों को टिकट नहीं दिए। जबकि हर पार्टी हर बार कहती है कि वो कम-से-कम तीस प्रतिशत औरतों को टिकट देगी।

संसद और राज्य विधान सभाओं में पिछले चालीस सालों में औरतों की संख्या घटी है, बढ़ी नहीं है। इसी से यह साबित हो जाता है कि राजनैतिक पार्टियां कहती कुछ और करती कुछ हैं। सभी पार्टियां दोषी हैं राजनीति में औरतों की भागीदारी न बढ़ाने की। आज जब यह क़ानून बन रहा है कि पंचायतों में 30 प्रतिशत औरतों का चुनाव ज़रूरी होगा, विधान सभाओं में तीन चार प्रतिशत से अधिक औरतें नहीं होंगी। यह हालत बहुत गंभीर है।

इस पर सिर्फ़ राजनैतिक पार्टियों को ही नहीं हर भारतीय नागरिक को सोचना है। खासतौर से हर औरत को सोचना होगा।

पुरुष नेता की छाया

अधिकतर राजनैतिक औरतें किसी मर्द नेता की पत्नी, बेटी, बहन हैं। जो इक्की-दुक्की औरतें चुनाव लड़ती भी हैं उनमें से ज्यादातर किसी मर्द नेता की रिश्तेदार होती हैं। पति चल बसे तो पत्नी राजनीति में आ गई—मानो राजनैतिक सीट एक परिवार की बपौती है। पिता नहीं रहे और कोई बेटा नहीं है या बेटा निखट्टू है या राजनीति से दूर रहना चाहता है तो बेटी राजनीति में आ जाएगी। यहां राजनेता की क़ाबलियत उनके परिवार से आंकी जाती है। उनके गुणों, अनुभव, राजनैतिक कार्यों से नहीं। ऐसी 'रिश्तेदार' महिला उम्मीदवारों को जनता की सच्ची प्रतिनिधि या एक महिला नेता मानना भी मुशकिल होगा। वो तो अपने पुरुष (पिता, पति) की छाया मात्र हैं। इनमें से कुछ औरतें कुछ बरसों में अच्छी, सफल नेता व राजनैतिक कार्यकर्ता बन जाए यह अलग बात है। कुछ बन भी जाती हैं पर ज्यादातर पारंपरिक औरतों का ही किरदार अदा करती हैं।

गंदी राजनीति

इस बात पर ग़ौर करना ज़रूरी है कि राजनीति में क्यों ज्यादा औरतें हिस्सा नहीं लेतीं। इसके पीछे कई कारण हैं, लेकिन खास कारण है वह विचारधारा कि औरतों का उचित स्थान आज भी घर के अंदर है और मर्दों का स्थान है बाहर। यह "अंदर" और "बाहर" या "निजी" और "सार्वजनिक" का भेद औरतों और पुरुषों का किरदार निर्धारित करता है। अच्छी, नेक, इज्जतदार औरतें सार्वजनिक क्षेत्र में नहीं जातीं, उन्हें घर ही शोभा देता है, यह कहा और माना जाता है। इसी तरह की दलीलें दे कर औरतों को उन सब संस्थाओं, सभाओं से दूर रखा जाता रहा है जहां पर समाज के बारे में सब फ़ैसले लिए जाते हैं।

इसी "निजी" और "सार्वजनिक" (पर्सनल और पब्लिक) के भेद की वजह से सैंकड़ो बरसों तक औरतों को वोट देने का अधिकार ही नहीं था। औरतों को सालों साल संघर्ष करने पड़े थे मतदान का हक़ पाने के लिए। औरतें, दास, ग़रीब या संपत्तिहीन व पागल सब एक श्रेणी में आते थे। इन सब को मतदान का अधिकार नहीं था। इन सब को सामाजिक व राजनैतिक अधिकारों व ज़िम्मेदारियों के क़ाबिल नहीं माना जाता था।

'मर्दाना' माहौल

औरतों के राजनीति से दूर रहने का एक और बड़ा कारण है राजनीति का 'मर्दाना' माहौल। "मर्दाने" का मतलब यहां सिर्फ़ यही नहीं है कि वहां सिर्फ़ मर्द होते हैं। इसका काफ़ी व्यापक मतलब है—राजनीति में मर्दानी ज़बान बोली जाती है। गाली-गलौज सब जायज़ ही नहीं, ज़रूरी है। मर्दाने का मतलब है हिंसात्मक माहौल—जहां हर पार्टी गुंडे पालती हैं, भीड़ इकट्ठा करने और भीड़ हटाने के लिए हर हथकंडा अपनाती है। मर्दों की भीड़ में अकेली या दो चार औरतों का चलना तक दूभर हो जाता है, इज्जत से रहने की बात छोड़िए। सड़कों पर ही नहीं, संसद और विधान सभाओं में अक्सर मार-पीट होती है, एक दूसरे पर जूते फेंके जाते हैं, गंदी गालियां दी जाती हैं।

एक और बड़ा कारण है राजनीति में पैसे का बोलबाला। बहुत कम औरतें ऐसी हैं जिनके पास अपना पैसा है और इतना है कि वो उसे पानी की तरह बहा सकें।

राजनीति में आने वाली "सार्वजनिक" औरतों के चरित्र पर सभी लोग कीचड़ उछालने को बैठे रहते हैं। हर औरत की शक्ल, कपड़ों, उसके उठने-बैठने, मिलने-जुलने पर फब्तियां कसी जाती हैं। बड़ी-बड़ी अखबारें भी औरतों के साथ ऐसा सलूक करती हैं।

इन्हीं सब कारणों से औरतें राजनीति में आने से घबराती हैं। इसी वजह से मतदाताओं की हैसियत में भी औरतें सक्रिय नहीं होतीं। चुनावों में होने वाली मीटिंगों में मर्द ही भरे रहते हैं। गांवों में फिर भी औरतें आ जाती हैं मीटिंगों में, शहरों में बहुत कम आती हैं। जब बोलने वाले मर्द हैं, सुनने वाले मर्द हैं तो फिर औरतों की खास ज़रूरतों और मांगों की बात ही नहीं होती। औरतों के मुद्दे चुनावी मुद्दे नहीं बन पाते। यानि आधी प्रजा का कोई ज़िक्र नहीं। यानि आधा प्रजातंत्र, और आधे प्रजातंत्र का मतलब है बेकार प्रजातंत्र।

बदलाव जरूरी

इस सूरते हाल को बदलना ज़रूरी है। प्रजातंत्र में जनता की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है। जनता तय करती है उनके प्रतिनिधि कौन हों, कौन उनके लिए क़ानून बनाएं। औरतों को राजनीति से दूर रह कर नुकसान ही है। इस दूरी को मिटाना ज़रूरी है।

अगर राजनीति गंदी है तो उस से दामन बचाने की जगह उस में जाकर उसे साफ़ करना होगा। आखिर औरतों से बढ़कर सफ़ाई करने वाले और कहां मिलेंगे। औरतों को एक बार फिर से राजनैतिक आंदोलन छेड़ना होगा। इसके बिना अब कोई चारा नहीं है। ऐसी सरकारें लानी होंगी जो औरतों की ज़रूरतें समझें और उन्हें पूरा करें। जो समाज में ऐसा माहौल बनाएं जहां औरतें सुरक्षित हों और अपने आप को सुरक्षित महसूस

करें। जहां औरतों की इज्ज़त हो, जहां औरतों को काम मिले, काम के वाज़िब और बराबर दाम मिलें। जहां उन्हें आर्थिक अधिकार हों, संपत्ति का अधिकार हो, ज़मीन के पट्टे उनके नाम हों। जहां सेहत का पूरा इंतजाम हो, पीने को साफ़ पानी हो, राशन पूरा व समय पर मिलता हो। ये सब तभी हो सकता है जब प्रजा जागरूक होगी, अपनी ज़िम्मेदारी निभाएगी।

भाग्य भरोसे बैठने से काम नहीं चलता। अच्छा भाग्य बनाने के लिए मेहनत करनी पड़ेगी और यह कहना पड़ेगा—

काम ऊपर वाले का कुछ हमने हल्का है किया
फ़ैसले करने का हक़ अब अपने हाथों में लिया।